सूरदास का काव्य-वैभव

संग्रहणीय शोध-ग्रन्थ

१ प्रसाद की दार्शनिक चेतना
डॉ० चक्रवर्ती
मू०२० ००

२ संत साहित्य
डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
मू० १८ ००

३ हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया
डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
मू० १२ ५०

४ मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य
डॉ० शिवसहाय पाठक
मू० १८ ००

५ आधुनिक हिन्दी कविता मे ध्वनि
डॉ० कृष्णलाल शर्मा
मू० १५ ००

६ छायावाद काव्य तथा दर्शन
डॉ० हरनारायण सिंह
मू० १५ ००

७ प्रगतिवादी समीक्षा
श्री रामप्रसाद त्रिवेदी
मू० १० ००

८ आधुनिक हिन्दी-काव्य भाषा
डॉ० रामकुमार सिंह
मू० २५ ००

९ हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास
डॉ० कमलकुमारी जौहरी
मू० ३० ००

१० सूरदास का काव्य वैभव
डॉ० मुंशीराम शर्मा
मू० १२ ५०

११ काव्य मे रहस्यवाद
डॉ० बच्चूलाल अवस्थी
मू० १२ ५०

सूरदास का काव्य-वैभव

डॉ० मुंशीराम शर्मा
एम० ए०, पी एच० डी० डी० लिट



ग्रन्थम,
रामबाग, कानपुर

ग्रन्थम



३.३६

मूल्य
बारह रुपए पचास पैसे

प्रकाशक
ग्रन्थम, रामबाग कानपुर

प्रकाशनकाल
नवम्बर १९६५

मुद्रक
मानक प्रिण्टर्स आनन्दबाग
कानपुर-१

आमुख

प्रस्तुत प्रबन्ध कविकुल तिलक महात्मा सूरदास की काव्यश्री पर प्रकाश डालने के लिए लिखा गया है। प्रकाशित तो वह ४०० वर्षों से है परन्तु काव्यशास्त्र की दृष्टि से उसका विश्लेषण अभी तक बहुत कम हुआ है। सर्व प्रथम काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक स्वर्गीय लाला भगवानदीन ने 'सूर पचरत्न' की भूमिका में सूर के काव्य का शास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण किया था। श्री शिखर चन्द्र जैन का 'सूर एक अध्ययन' पुस्तक में भी सूर की कला का विवेचन किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका में जो विचार प्रकट किए गए हैं उनमें भी भावपक्ष के साथ काव्यकला की मीमांसा उपलब्ध होती है। 'सूर सौरभ' में हमने भी सूरदास के काव्य की विशेषताओं के उद्घाटन का प्रयत्न किया है। कुछ अन्य ग्रन्थ भी इधर प्रकाशित हुए हैं जिनमें सूर की काव्यकला का विवेचन प्राप्त होता है।

महात्मा सूरदास से सम्बन्धित हमारे तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—सूर सौरभ, भारतीय साधना और सूर साहित्य,' तथा 'सूरदास और भगवद्भक्ति। भक्ति विकास' शीर्षक ग्रन्थ में भी हमने सूरदास की भक्ति का प्रतिपादन किया है। सूरकाव्य का अध्ययन और अध्यापन करते हुए सूर के काव्य रूप की कई ऐसी दिशाओं का आभास हुआ जो अभी तक अनुद्घाटित पड़ी रहीं। इनमें से एक दिशा है सूर के काव्य का वक्रोक्ति ध्वनि तथा औचित्य सम्प्रदाय की दृष्टि से अध्ययन। मैंने अपने दो शिष्यों को इसी दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया है। और वे तन् मन एक होकर इस कार्य में जुट गये हैं।

'साहित्य लहरी' में सूरदास के जीवन परिचायक पद के रहते हुए भी साधारण नहीं बड़े-बड़े विद्वानों के अन्दर भी संदेह बना हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस पद की प्रामाणिकता स्वीकार की थी और जिसके आधार पर उन्होंने सूर को एक महान कुल से सम्बद्ध माना था, उस पद को अप्रामा

णिक घोषित करने का प्रबल प्रयत्न होता रहा है और वह केवल इस आधार पर कि वार्ता साहित्य म एक स्थान पर उन्हें सारस्वत लिखा गया है। हम इसके पूव भी लिख चुके हैं कि भटट और सारस्वत दानों शब्दो में कोई विरोध नही है। काश्मीरी भटट तथा महाराष्ट्रीय भटटों का एक वग आज तक अपने को सारस्वत कहता है। भटटो को विद्वदजन सरस्वती पुत्र कहते ही रहे हैं। सरस्वती पुत्र का अथ सारस्वत ही है। बाणभटट ने भी अपनी उत्पत्ति का वणन करते हुए अपने पूवजा का सरस्वती से उदभूत माना है। सूरदास के पूवज महाकवि चन्दबरदायी न भी जहाँ अपन आप को कवि 'भटट बरदायी आदि लिखा है वहाँ सारस्वत भी लिखा है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जिस पथ्वीराज रासउ का सपादन किया है उसकी भूमिका के पृष्ठ १२५ १२६ १२७ तथा १२८ पर उन्होने पुरातन प्रबध सग्रह में सुरक्षित 'पृथ्वीराज प्रबध का सारांश उपस्थित किया है। इस सारांश मे पृष्ठ १२७ पर चन्द अपने को 'सारस्वत' कहता है— मैं सिद्ध सारस्वत करता हूँ।

साहित्यलहरी म के मुनि पुनि रसन के लेख' टेक वाले पद म सूर ने जिस सवत का निर्देश किया है उसे हमने सावत्सरिक गणना के आधार पर १६२७ विक्रमी माना था। 'सुवल' शब्द से हमने वषम सवत्सर का अथ लकर जो स० १६२७ म पडता है एसा लिखा था। इधर जो खोज हुई है उसस इसी सवत की सत्यता सिद्ध हो रही है।

सूरदास का काय वभव नाम से अब हमारा यह चतुथ ग्र थ सूर साहित्यानुरागियों के समक्ष उपस्थित हो रहा है। इसका कुछ अ श पूव ग्र थों म भी आ चुका है। विन्यत सूर की काव्य सपदा पर ही इसम विचार किया गया है। काव्य के भाव तथा कला दो पक्ष सव स्वीकृत हैं। क्रोचे के अनुसार दानों एक दूसरे में ऐसे अनुस्यूत हैं कि उनका पृथक्करण दुरूह एव कष्ट साध्य सा प्रतीत होता है। सवश्रष्ठ अनुभूति अपनी अभिव्यक्ति के अन्यतम क्षणों में सवश्रष्ठ शब्दों म ही प्रकट हाती है। हमारे यहाँ कवि को इसीलिए प्रजापति' की सज्ञा प्राप्त है फिर भी आलोचकों ने दोनों क पाथक्य का प्रयत्न किया ही है। भाव जहा हृदय प्रसूत हैं वहाँ कला बुद्धि जन्य है। इसी हेतु उस वदग्ध भगी भणिति कहा गया है। विदग्धता बुद्धि की उपज है। उसमें जिस भंगिमा के दशन होते हैं। उसे चिंतन तथा मनन का परिणाम कहा जा सकता है, पर जस प्रथा म दोनों मिलकर एक हो जाते हैं वसे ही सवश्रष्ठ काव्य के लिय क्रोच ने उनकी एकता का प्रतिपादन किया है।

सूरदास का भाव भडार अपार है उसी प्रकार उनकी कला भी, अभिव्यक्ति कौशल भी गहन एवम विशाल है। किसी आलोचक ने सूरदास की महिमा को लक्ष्य करके कहा है—

उत्तम पद कवि गग के उपमा को बलवीर।
केशव अर्थ गभीरता सूर तीन गुण धीर ॥

महराज रघुराज सिंह ने भी सूर के कलापक्ष की प्रशसा करते हुए लिखा है—

भने रघुराज और कविन अनूठी उक्ति।
मोहि लागी जूठी जानि जूठी सूरदास की ॥

प्रस्तुत प्रबध को पढ़कर यदि सहृदय पाठकाे म किसी नवीन दिशा का आभास हो सके तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूगा। मेरे प्रिय शिष्य श्री वाल्मीकि त्रिपाठी एम ए इसे 'प्रथम प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं। अत मेरे परिश्रम के साथ इसमें उनकी श्रद्धा का भागदान भी सम्मिलित है। परम ब्रह्म उन्हें यशस्वी करें।

देवोत्थान एकादशी स० २०२२
भागवतम्
९/१७ आर्य नगर
कानपुर

मुशीराम शर्मा



विषय-सूची

—०—

प्रथम अध्याय

आचार्य वल्लभ और महात्मा सूरदास

महात्मा सूरदास का प्रादुर्भाव ऐसे समय मे हुआ जब देश म अपने शासन तन्त्र से निकलकर पारतन्त्रता के पाश म आबद्ध हो चुका था। परतन्त्रता अपने साथ जिन अभिशापो को लाती है उनके कुफल भी इस देश को भोगने पडे। महाप्रभु वल्लभाचाय न इस दिशा म कई सकेत किए हैं यथा—

> म्लेच्छाक्रान्तेषु देशषु पापक निलयषु च।
> सत्पीडा व्यग्र लोकषु कृष्णा एव गतिमम॥
> गगादितीय वध पु दुष्टरक्षा वृतोष्विह।
> तिरोहिताधिदवषु कृष्ण एव गतिमम॥

आर्यों ने जिन्ह म्लच्छ सज्ञा दी होगी और जिन्ह दुष्ट कहा होगा वे अपने आचरण म आर्यों स विपरीत रह होग। कम का विधान बडा विचित्र है। जिन्हें म्लच्छ कहत थ वे ही इस देश क त त्र नियामक बन गय। आचाय वल्लभ जसे साधनशील सत पुरुष का इस परिस्थिति म व्यग्र होना स्वाभाविक था। दीन-हीन की अतिम शरण भगवान ही हैं। आचाय वल्लभ जब कृष्ण को ही वरण्य शरण्य कहत हैं तब उनका यही भाव है।

महात्मा सूरदास उन दिनो आगरा और मथरा क बाच रनकता क समीप यमना घाट पर रहत थ और सयास ले चुक थ। उनके भक्त हृदय की ख्याति चतुर्दिक व्याप्त हो चुकी थी। व भक्ति क पद बनाकर गाया करते थे। आचार्य वल्लभ सूर की ख्याति स आकर्षित होकर ही उनक समीप

पहुंच और वह दैवी संयोग ही था कि दोनों एक ही भक्ति-मार्ग पर आरूढ़ हो गये।

कहा जाता है कि आचार्य महाप्रभु का प्राकट्य हुआ तभी महात्मा सूरदास का भी । सूर सौरभ में सूरसारावली की निम्नांकित पंक्तियों के आधार पर हमने सूरदास का जन्म सं० १५१५ स्थिर किया है—

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन ।
सिव विधान तप कियो बहुत दिन तऊ पारि नहिं लीन ॥

इन पंक्तियों के अनुसार सूरदास को साधन जीवन की परिपक्वावस्था में अर्थात सरसठ वर्ष की आयु में भगवतदर्शन हुये। यह गुरु कृपा का ही प्रसाद था। सूरसारावली में—

सहस रूप बहुरूप रूपपुनि एक रूप पुनि दोय ।

शब्दों द्वारा इसी दर्शन की अभिव्यक्ति की गई है। साहित्य लहरी में दो पद सूरदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाले हैं। एक पद का सम्बन्ध उनके वंश के साथ है और दूसरा पद साहित्यलहरी के निर्माणकाल का द्योतक है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरी-नन्द का लिखि सुबल सम्वत पेख ॥
नन्द-नन्दन मास छय ते हीन ततीया वार ।
नन्द-नन्दन जनम ते हैं बान सुख आगार ।

इस पद में नन्दनन्दन मास अक्षय ततीया कृतिका नक्षत्र सुकर्म योग और रविवार दिवस तथा सुबल सं० का उल्लेख है। इनमें एक आध को छोड़कर सब सं० १६२७ में पड़ते हैं। सुबल का पर्यायवाची वृषभ संवत भी इसी वर्ष में पड़ता है अतः सूर सं० १६२७ तक जीवित थे यह सहज अनुमान का विषय है। दूसरे पद के अनुसार सूर महाकवि चन्दवरदाई के वंश में उत्पन्न हुए थे यह तथ्य भविष्य पुराण द्वारा समर्थित है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा अन्य अनेक विद्वानों द्वारा स्वीकृत है। वल्लभ सम्प्रदाय में उन्हें सारस्वत ब्राह्मण कहा जाता है वह भी इस तथ्य के विरुद्ध नहीं है। सूरदास ने स्वयं अपने को दवीपुत्र लिखा है। बाणभट्ट ने अपने वंश का संबंध सरस्वती के साथ स्थापित किया है। पौराणिक शैली में सरस्वती का अर्थ विद्या है, ब्राह्मण ज्ञान के निधान और विद्याव्रत के स्नातक माने जाते हैं।

कान्मीरी तथा महाराष्ट्रीय भट्टों का एक वर्ग अपने को सारस्वत कहता है। ब्रह्मभट्टों के गोत्र को जाँचने से ज्ञात हुआ कि इनके गोत्र अन्य ब्राह्मणों के समान ही हैं। ऐतिह्य के ज्ञाता चन्दवरदाई को भी सारस्वत[1] ही मानते हैं। 'सूरसौरभ' में हमने एतद्विषयक पुष्कल सामग्री एकत्र कर दी है।

ऐसे उच्च वर्ग में उत्पन्न होकर सूरदास जिस पथ के पथिक बने वह उनके आभिजात्य के अनुकूल ही था।

भक्तिधारा

सूरदास के समय में ब्रजमण्डल भक्ति प्रधान सम्प्रदायों का केन्द्र बन रहा था। यह भक्ति कतिपय विद्वानों के अनुसार[2] दक्षिण से उत्तर में आई। 'भक्ति का विकास' ग्रन्थ में हमने भक्तिधारा का वेदकाल से ही प्रारम्भ हुआ निश्चित किया है। यह अवश्य सत्य है कि हिन्दी के भक्तिकाव्यकाल का उन्नयन जिन आचार्यों द्वारा हुआ उनमें रामानन्द जी को छोड़कर सब दाक्षि-णात्य थे। आचार्य शंकर, रामानुज, माध्व, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, वल्लभ सभी दाक्षिणात्य हैं। वेद के प्रति सबकी दृढ़ आस्था है। वेद में जो प्रार्थनायें आती हैं उनमें मानव-हृदय की अतीवकातर परन्तु शाश्वत पुकार अन्तर्हित है। भक्ति तरंगिणी और श्रुति सगीतिका में वेदमन्त्रों के जो गीतानुवाद प्रस्तुत किये गए हैं उनमें भाव भरित भक्त हृदय का आत्म निवेदन अपने चारु रूप में प्रस्फुटित हुआ है। इन भावनाओं में वैयक्तिक ही नहीं सामाजिक

---

१ काव्योपजीवी तथा वन्दिक ब्राह्मणों ने मिलकर किसी समय ब्रज के आसपास अपना एक वर्ग बनाया था जिसे ब्रह्मभट्ट कहते हैं। सूत मागधों के साथ इस वर्ग का कोई सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि भट्ट शब्द से वे भी अभिहित होते हैं।

२ क्वचित् क्वचित् भविष्यन्ति नारायण परायणाः
क्वचित्, क्वचित् महाराज द्राविडेषु च भूरिशः

भागवत ११ ५ ३८ ३९

दक्षिण के आल्वार अपनी भक्ति भावना के लिए प्रख्यात हैं। इनकी मूर्तियाँ भी दक्षिण के वैष्णव मन्दिरों में स्थापित हैं। आण्डाल का नाम इनमें विशेष रूप से प्रख्यात है।

सहराग भी है। वैदिक प्रार्थनाओं में प्रभु को माता पिता विधाता बन्धु सखा आदि कई रूपों में स्मरण किया गया है। जिसे हम माधुर्यभाव की भक्ति कहते हैं उसके बीज भी वेदों में विद्यमान हैं। वेद से चलकर यह भक्तिधारा कभी सान्द्र कभी विरल रूप में अपने अस्तित्व को सार्थक करती हुई आज चली आई है। सूर के समय में इसका सान्द्र रूप था।

पाञ्चरात्र आगम महाभारत भगवद्गीता नारद भक्तिसूत्र साहित्य भक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों में भक्ति के स्वरूप की मीमांसा उपलब्ध होती है। महाभारत का नारायणी पर्व जिसे एकान्तिक भक्ति कहता है गीता जिसे अनन्य चिन्तन और पर्युपासन कहती है भक्तिसूत्र जिसे परम प्रेम रूप तथा परानुरक्ति का नाम देते हैं। परवर्ती वैष्णव आचार्यों ने जिसे पदविद्या शरणागति की संज्ञा दी और एकादश आसक्तियों में जिसे विभक्त किया भागवतकार ने जिसे श्रवण कीर्तन आदि नौ विभागों में विभक्त किया सूर ने उसी पद्धति का अनुगमन करते हुए भक्ति को भक्ति पथ सब मार्गों आदि सबसे उच्चतर स्थान दिया।

महात्मा सूरदास ने इस भक्ति की सम्यक् दीक्षा आचार्य वल्लभ से प्राप्त की जो स्वयं विष्णुस्वामी के मतानुयायी थे। वल्लभ के गुरु श्री नारायण भट्ट थे। अन्य मतानुसार माधवेन्द्र पुरी जो मध्वसम्प्रदाय के आचार्य कहे जाते हैं। कृष्ण चैतन्य के गुरु भी यही थे। इनके शिष्य माधवानन्द आचार्य वल्लभ के दोनों पुत्रों के गुरु थे। आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैत का सिद्धान्त भी किसी न किसी रूप में पहले से चला आता था। पुष्टिमार्ग भगवत् कृपैकलभ्य अनुग्रह मार्ग है। आचार्य वल्लभ ने इसे जो रूप प्रदान किया वह वस्तुतः नूतन था।

ब्रज में जब इस भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ तब लोदी वंश का प्रभुत्व था। इतिहासकारों ने मुस्लिम शासकों के अत्याचारों का जो विवरण दिया है उसमें मथुरा और वृन्दावन के मन्दिरों के तोड़ जाने तथा मथुरा के घाटों पर स्नान करने के निषेध आदेश भी सम्मिलित हैं। आचार्य वल्लभ ने अपनी ब्रजयात्रा में इन अत्याचारों का विरोध किया। इसका प्रभाव सिकन्दर लोदी पर भी पड़ा होगा। वह शासन जीवन के अंतिम समय में दयालु हो गया था और जैसा किशनगढ़ के राजा भक्त प्रवर नागरीदास जी की कृति उत्सव माल तथा टीका से प्रकट होता है, वह आचार्य वल्लभ का प्रशंसक भी बन गया था।

आचार्य वल्लभ के पिता श्री लक्ष्मण भट्ट ने उन्हें गोपाल मन्त्र की दीक्षा दी थी। सन् १४८७ ई० में जब लक्ष्मण भट्ट का निधन हो गया तो आचार्य वल्लभ भारत-यात्रा पर चल पड़े और पुरुषोत्तम के दरबार में पहुँचे। वहां एकम् शास्त्र देवकी पुत्र गीतम। एकादवो देवकीपुत्र एव। मन्त्रापि एक तस्य नामानियानि परमाप्येकम तस्य देवस्य सेवा।

इस श्लोक द्वारा उन्होंने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया उनसे प्रभावित होकर राजा ने इनका सम्मान किया। इसके उपरान्त वे पण्ढरपुर पहुँचे और वहाँ से विजयनगर गये। राजा कृष्णदेव राय ने उनका कनकोत्सव किया। फिर वह काशी आ गये काशी से जगन्नाथपुरी। इन्हीं दिनों श्री देवन भट्ट की पुत्री महालक्ष्मी के साथ उनका विवाह हुआ। इसके उपरान्त वह व्रज प्रांत में आये। श्रावण शुक्ल एकादशी गुरुवार १५६३ विक्रमी के दिन उन्होंने गोकुल में गोविन्द घाट पर विश्राम किया। यह तिथि 'सम्प्रदाय' में मान्य समझी जाती है उनके सिद्धांत रहस्य ग्रन्थ के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य वल्लभ भक्ति मार्ग की मर्यादा में समस्त वस्तुओं को भगवत समर्पित करके कार्य करने को महत्व देते हैं। यही आत्म निवेदन भी है। जिसमें ब्रह्मभाव को प्राप्त हुआ भक्त उसी प्रकार निर्मल हो जाता है जिसप्रकार पुण्यता या जाह्नवी के जल में मिला हुआ नालियों का जल। सम्प्रदाय में शरण दीक्षा तथा ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा भी प्रसिद्ध है। प्रथम को नाम निवेदन और द्वितीय को आत्म निवेदन कहते हैं। गोकुल से वे गोवर्धन पर्वत पर स्थित एक मंदिर को देखने गये जहां उनके गुरु माधव वेन्द्रपति रहा करते थे। मति जी के ही नाम पर समीपस्थ जतीपुरा ग्राम भी है। सन् १४८१ ई० के फाल्गुन मास में इस मन्दिर में स्थापित देव दमन मूर्ति की पूजा का उत्सव हुआ। यति जी सन् १४८३ ई० में जगन्नाथ पुरी गये और वहीं स्वर्गवासी हो गये। इस मन्दिर के निकट ही पूरनमल्ल खत्री ने एक नवीन मन्दिर की नींव रक्खी और देव-दमन मूर्ति का नाम आचार्य वल्लभ की सम्मति से श्रीनाथ जी रक्खा गया।

व्रज से वह पुनः जगन्नाथपुरी गये फिर काशी में आकर सुबोधनी की रचना की। काशी से अड़ैल पहुँचे और पुनः व्रज में आये। जैसा लिख चुके हैं वे गुनकता के समीपवर्ती गौघाट पर भी पहुँचे जहां महात्मा सूरदास रहते थे।

यहीं सूरदास आचार्य वल्लभ की शरण में पहुँचे। और उनसे दीक्षा ग्रहण की। गिरिराज पर श्रीनाथ मंदिर की स्थापना हो चुकी थी। संवत

के मूर्य विनान तथा यागाश्रमो तक पहुचते थ। साधुओ के इस आवागमन ने इस वसुधा को एक कुटुम्ब का रूप दे दिया था। आज के बाद मानवता के माग म विभिन्नता की खाइयाँ खोजत हैं और पारस्परिक सघर्षो का प्रोत्साहन देत हैं, पर म नो के मण्डल मानवता का प्रचार करते थ। हृदय हृदय म एकता की रागिनी का गुजायमान करते थ और सबके विकास का माग प्रशस्त तथा उ मुख करते थ। सूर का हृदय की यह एकता परम्परा द्वारा सहज सुलभ थी। इसीलिय उनकी रचनाओ मे कटुक्तियो का अभाव है। एक का दूसरे स नीचा दिखान की प्रवृत्ति अनुपलब्ध है और जिस हम सासारिकता कहते है अथवा सामाजिकता और विषमता कहत है उसका प्रभाव तक दृष्टि गोचर नही होता।

सूर ने अनक ग्र थ लिखे होग। उनक नाम स प्रचलित कई ग्रथो का उल्लख हमने सूर सौरभ म किया है पर ख्याति रूप म उनके तीन ही अब तक सब की जिह्वा पर विद्यमान रह है। इनक नाम है– १ सूरसागर २ सूर सारावली ३ साहित्य लहरी। इन तीनो म सूरसागर ही कीर्ति का प्रमुख आधार है। है तो यह सागर पर आचाय विट्ठलनाथ की दृष्टि म यह भव सागर से पार करने वाला एक अदभुत जहाज है। इसका निर्माण कर सूर की तड़पती अतृप्त आत्मा तृप्ति पा सकी थी और अब तक जो उस पढ़ता रहा है वह भी शांति प्राप्त कर रहा है और जब तक उसका अध्ययन जीवित है सभी उस पढ़कर आप्यायित होते रहग।

सूरसागर की कई प्रतियाँ अबतक उपल ध हो चकी है। नवलकिशोर प्र स लखनऊ स जो प्रति प्रकाशित हुयी थी वह भ्रमात्मक थी। बकटेश्वर प्र स बम्बई मे सवत १९८० म जो प्रति प्रकाशित हुई वह बहुत शुद्ध थी। अब इसका एक नवीन स स्करण भी प्रकाशित हो चका है पर पदो की सख्या म अनेक अशुद्धिया हैं। इन अशुद्धियो का विवरण सूर सौरभ क चतुथ सस्करण क पृष्ठ १०८ १ ९ पर दिया हुआ है। स्वर्गीय रत्नाकर जी न नागरी प्रचारिणी सभा क तत्वावधान म सूरदास की कई प्रतियो का मिलान करक एक शुद्ध सस्करण कई खण्डो म प्रकाशित किया था परन्तु उनके निधन स यह काय अपूर्ण ही रह गया। उनक उपरान्त प० नन्ददुलार वाजपेयी न सूरसागर का सम्पादन किया और वह दो खण्डो म नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हुआ। दोनो खण्डो म दो सौ तीन सन्दिग्ध तथा सरसठ प्रक्षिप्त पद दिये गय हैं। कांकरोली वाली प्रति म पदो की सख्या इसस भी अधिक है काशी वाली साह जी की प्रति म लगभग ६ हजार पदो का सग्रह

है। शिवसिंह सरोज के रचयिता ने ६० हजार पदों के देखने की बात लिखी है पर अभी तक जितने पद उपलब्ध हुए हैं उनकी संख्या सात हजार से ऊपर नहीं पहुंचती। सारावली में एक लक्ष पदबन्दों की उक्ति आती है। यदि पदबन्दों की दृष्टि से देखा जाय तो एक लक्ष पदबन्द दस हजार पदों में समाविष्ट हो सकते हैं। इतनी मात्रा में पदरचना कर लेना कोई असम्भव बात नही है।

सूरसागर के पद भागवत के आधार पर द्वादश स्कन्धों में विभाजित किये गए हैं परन्तु वे सर्वांगत भागवत का अनुवाद नही हैं। सूर ने इस रूप में उनकी रचना की भी नहीं होगी। सूरसागर के प्रथम स्कन्ध में आत्म निवेदन सम्बन्धी पदों की अधिकता है। हमारी सम्मति में ये पद आचार्य वल्लभ द्वारा दीक्षित होने के पूर्व ही कवि द्वारा निर्मित हो चुके थे। इन पदों में सूर के हृदय का दैन्य कातर क्रन्दन तथा पश्चात्ताप भरा पड़ा है। ज्ञान और वैराग्य मायामोह के पाश अज्ञान और अन्धकार संसार की असारता आदि विषय इन पदों द्वारा अभिव्यंजित होकर विकास की जिस स्थिति की सूचना देते हैं वह सूर का उच्चकोटि का संत सिद्ध करती है। ये पद मर्म-स्पर्शी हैं और सूर के हृदय की गम्भीर वेदना को प्रगट करते हैं। कुछ पद ऐसे भी हैं जिनपर भागवत के प्रथम स्कन्ध की छाया है। इन पदों में व्यास अवतार शुकदेव की उत्पत्ति, सूत शौनक-सम्वाद, भीष्म का देहत्याग श्री कृष्ण का द्वारका गमन युधिष्ठिर का वैराग्य परीक्षित का जन्म, ऋषि का शाप आदि विषय वर्णित हुए हैं। द्वितीय स्कन्ध के प्रारम्भ में भक्ति और सत्संग की महिमा भक्ति के साधन आत्मज्ञान तथा भगवान का विराट रूप में आरती का वर्णन है। नव पदों में भागवत के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति विराट पुरुष चौबीस अवतार ब्रह्मा की उत्पत्ति चार श्लोक आदि का वर्णन है। तृतीय स्कन्ध में उद्धव विदुर-सम्वाद, विदुर को मैत्रेय से ज्ञान की प्राप्ति सप्तर्षि चारमनु देवासुर जन्म वाराह औतार कर्दम देवहूति का विवाह कपिलमुनि का अवतार भक्ति की महिमा और देवहूति का हरिपद की प्राप्ति आदि का वर्णन भागवत के तृतीय स्कन्ध के अनुसार है। कुछ विषय ऐसे हैं जो भागवत में अधिक है जैसे विदुर जन्म, रुद्र उत्पत्ति आदि। और कुछ विषय छोड़ भी दिये गये हैं जैसे सांख्ययोग, पुरुष प्रकृति आदि के वर्णन। सम्भव है सूरसागर की किसी अन्य प्रति में इन विषयों का वर्णन किया गया हो।

चतुर्थ स्कन्धमें भागवत के चतुर्थ स्कन्धमें आये हुए विषयों का अतीव

संक्षिप्त किन्तु मार्मिक वर्णन है यथा मत्स्यपरक अवतार पार्वती विवाह ध्रुव कथा, पृथु अवतार तथा पुरंजन आख्यान। इसी प्रकार पंचम स्कंध में ऋषभ देव जड़भरत आदि की कथा भागवती कथा का संक्षिप्त रूप है। षष्ठ स्कंध में भागवत के आधार पर अजामिल बृहस्पति, वृत्रासुर इन्द्र आदि की कथाएं वर्णित हुई हैं। सप्तम स्कंध में नृसिंह का अवतार आगमन के आधार पर वर्णित है। परन्तु शिव और नारद की कथाएं भागवत में अधिक हैं आठवें स्कंध में गजेन्द्र मोक्ष कूर्मावतार समुद्र मंथन वामन तथा मत्स्य के अवतारों का वर्णन है भागवत के ही अनुसार परन्तु संक्षिप्त रूप में है।

नवम स्कंध में भागवत के अनुसार राजा पुरुरवा और उर्वशी का उपाख्यान च्यवन ऋषि की कथा हलधर विवाह राजा अम्बरीष और सौभरि ऋषि के उपाख्यान गंगावतरण परशुराम और अंत में रामावतार का वर्णन है। भागवत के इस स्कंध में राम की कथा संक्षेप में कह दी गई है परन्तु सूरसागर में उसका विस्तार पूर्वक वर्णन पाया जाता है। इसी स्कंध में नृप तथा कच देवयानी की कथाएं भी विस्तार से वर्णित हैं। गौतम अहिल्या की कथा भागवत के नवम स्कंध में नहीं है। नागरीप्रचारिणी सभा वाले सूरसागर के संस्करण में यह कथा छठ स्कंध में समाविष्ट है। इस स्कंध में राम के बालरूप का वर्णन सूर की प्रवृत्ति के अनुकूल ही है। सीता का विरह वर्णन भी अतीव मर्मस्पर्शी है।

दशम स्कंध सूरसागर का सर्वस्व है और उसमें चार सहस्र से भी अधिक पद हैं। सूर की समस्त कीर्ति का आधार यही स्कंध है। सूर की काव्य प्रतिभा कमनीय कला भावुकता व्यंग एवं विदग्धता सभी इस स्कंध में अपनी चरमसीमा का स्पर्श कर रहे हैं। भागवत में भी यह स्कंध सबसे बड़ा है। सूरसागर में इसके दो भाग हैं— पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में जन्म से लेकर कंसवध पर्यन्त सभी बाल लीलाओं का वर्णन है। सुप्रसिद्ध भ्रमरगीत भी इसी के अंतरगत है जिसमें सूर ने गोपियों के विरह का अतीव हृदयद्रावक चित्र खींचा है। और उद्धव प्रसंग के व्याज से निर्गुण पर सगुण योग पर प्रेम और ज्ञान पर भक्ति की विजय पताका प्रतिष्ठित की है। प्रेम सूर की भावना का प्रधान केन्द्र है और उसके सभी रूपों का उसने अतीव विस्तृत एवं प्रभावशाली, मार्मिक वर्णन किया है। सूर ने प्रेम तत्व का लौकिक और आध्यात्मिक दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है।

भागवत म दशम स्कंध दो भागो म विभाजित है। इसके विषयो का जो तात्विक विश्लेषण आचाय वल्लभ न किया है उसकी ओर पहले ही संकेत कर चके हैं। सूरसागर में उत्तराद्ध का भाग भागवत की भांति वहत आकार का न ी है। इसके केवल एक सौ अडतालीस पद हैं जिनमें जरासंघ स युद्ध द्वारका निर्माण कालयवन दहन, द्वारका प्रवेश रुक्मिणीहरण प्रद्युम्न का जन्म सत्यभामा और जामवन्ती स विवाह भौमासुर वध प्रद्युम्न विवाह उषा अनिरुद्ध कथा जरासंघ शिशुपाल, शाल्व, दन्तवक्र और बल्वल का वध सुदामाचरित्र कुरुक्षत्र म पुन गोपी आदि से मिलन आदि विषयो का वणन भागवत के हा अनसार है। ग्यारहवें स्कंध म उद्धव बदरिका आश्रम गमन नारायण अवतार तथा हंसावतार का वणन है। भागवत के इस स्कंध म ज्ञान भक्ति वराग्य आदि अनक विषयो का गम्भीर प्रतिपादन किया गया है। आचाय वल्लभ की दृष्टि में भी यह स्कंध अत्यन्त महत्वपूण था परन्तु सूरसागर म गम्भीर विवचन नस किया जाता। क्या भावना उस सहन कर पाती? दशन अपन स्थान पर महनीय है पर साहित्य का ता आधार ही भाव है। वह दशन का भी आत्मसात करता है पर अपने रूप में साहित्य में ज्ञान भावको अपन सिरपर रख लता है। भाव वहाँ पर रथी है तो दशन उसका रथ हृदय धनी है तो विश्लषण उसका वाहन। छान्दाग्य न इसी लिय साम का ऋचाओ पर आरूढ कर दिया है। साहित्य में भाव का साम्राज्य है विवचन का नही।

सूरसागर के बारहवें स्कंध में बुद्धावतार कल्कि अवतार और राजा परीक्षित तथा जनमजय की कथाए हैं।

सूरसारावली

इसके प्रारम्भ में मगलाचरण का पद है। जा कतिपय शब्दों क परिवतन क साथ सूरसागर क प्रारम में भी पाया जाता है। सारावली का प्रारम निम्नाकित पक्तिया स हाता है—

> अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
> पूरण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी॥

सम्पूण सारावली क अन तथ्यों के अनुशीलन करने पर एक वहत हास्यास्पद प्रतीत होती है। यह निम्नांकित पक्ति म सिद्ध हाता है—

खेलत यह विधि हरि हारी ने हरि होरी हो वेद विदित यह बात।
यह पंक्ति छन्द संख्या ग्यारह सौ चार के पश्चात फिर दोहराई गई है। छन्द न० १६ भी इस तथ्य का अनुमोदन करता है—

आज्ञाकारी नाथ चतुरानन करी सृष्टि विस्तार
होरी मन्त्र का विधिनीकी रचना रचे अपार॥

छन्द संख्या ८५९ में लिखा है——

यह विधि होरी खेलत खेलत बहुत भाँति सुख पाया।
धरि अवतार जगत में नाना भक्तन चरित दिखाया॥

होली का निर्देश सारावली के अन्य छन्दों में भी है। होली के पद पर जो फाग गाये जाते हैं उनकी टेक और तान बिल्कुल वैसी ही होती है जैसी ऊपर उद्धृत पंक्ति में प्रकट हो रही है। सारावली के ग्यारह सौ सात छन्द होली के इस वृहत गान की कड़ियाँ मात्र हैं। सारावली में पुरुषोत्तम वृन्दावन कुंजलता कालिन्दी सारसहंस गोवर्धन पर्वत सृष्टि रचना ब्रह्मा सतरूपा स्वायंभू वाराह अवतार कपिल सात लोक नव खण्ड महाद्वीप चौबीस अवतार आदि विषयों का मनोरम वर्णन हुआ है। रामावतार के वर्णन में राम के बालरूप के प्रति सूर के हृदय की ममता विशेष रूप में अभिव्यक्त हुई है। सूर के राम और सीता भी होली खेलते हैं जिसका वर्णन छन्द संख्या ०९ से ३१३ तक है। सारावली में सूर ने महात्मा बुद्ध को पाखण्ड का मण्डन करने वाला लिखा है। छन्द संख्या ३६० में कृष्णावतार की गाथा प्रारम्भ हुई है और उसमें कृष्ण सम्बन्धी प्रायः सभी बातें आ गयी हैं। सारावली भागवत और सूरसागर दोनों की सारसूची प्रतीत होती है। छन्द संख्या ११०३ में सूर ने इस हरिलीला का सार भी कहा है। सारावली में कौरव पाण्डव युद्ध की कथा संक्षेप में वर्णन की गई है। उसमें माखन चोरी दधि दान मान आदि की लीलायें भी आ गई हैं। दृष्टकूटों का भी उल्लेख है। राग रागिनियों के नाम भी पाये जाते हैं। चौरासी कोस की परिक्रमा वाले ब्रज के बनों का भी वर्णन है। सूर ने भगवान की नित्य शाश्वत लीला को ही सब कुछ माना है। इस के अतिरिक्त अन्य सब भ्रम मात्र है।

साहित्यलहरी

इस का निर्माण सं० १६२७ में हुआ। इसके विषय विकीर्ण हैं। जहाँ इस में बाल-लीला के पद हैं वहाँ संयोगिनी एवं वियोगिनी स्वकीया एवं

परकीया नायिकाओं के भी विभेद हैं। श्लेष के आधार पर अलंकारों का भी निरूपण किया गया है। इस की शैली दुरूह है जिसमें दृष्टकूटों की भरमार है। दृष्टकूटों का अर्थ लगाने में कठिनाई पड़ती है। अलंकारों में यमक श्लेष रूपकातिशयोक्ति मुद्रा अप्रस्तुत प्रशंसा समासोक्ति तथा अपह्नुति आदि अर्थ दुरूहता उत्पन्न करने के लिये प्रख्यात है। साहित्य में प्रयुक्त कुछ शब्द अपने वाच्यार्थ को छोड़ कर विशिष्ट अर्थों में रूढ़ हो गये हैं जैसे दधि सुत चन्द्र के अर्थ में शैलतनया पार्वती के अर्थ में। कहीं कहीं शब्द साम्य नवीन अर्थ की उद्भावना कर देता है। जैसे मास महीने का द्योतक बन जाता है। कुछ शब्द संख्या विशेष का भी अर्थ देते हैं जैसे विधु से एक संख्या तथा ग्रह से नौ संख्या। साहित्यलहरी में दृष्टकूटों के ऐसे चमत्कार पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। इस दृष्टकूट-पद्धति के अन्य किसी साहित्य में कदाचित ही हो।

साहित्यलहरी के प्रत्येक पद में किसी न किसी अलंकार का निर्देश अवश्य है। अलंकारों की परिपाटी हिन्दी में चन्दबरदायी के समय से ही चल पड़ी थी। आचार्य विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण से रसभेद के साथ नायिका भेद भी प्रारम्भ हो गया था। साहित्य लहरी में ये दोनों बातें विद्यमान हैं। गूढ़ बातों को दृष्टकूट के रूप में प्रकट करने की प्रणाली भी प्राचीन है। विद्यापति की पदावली, कबीर की उलट बासियां अमीर खुसरो की पहेलियां नाथ पंथियों के कतिपय छन्द एवं पद रासो के श्लेष महाभारत के गूढार्थ, वेद के सम्प्रश्न आदि दृष्टकूट शैली में मण्डित हैं। गोस्वामी तुलसीदास की सतसई में भी कई दोहे दृष्टकूट शैली के हैं। जो उद्देश्य इन काव्यों के दृष्टकूटों में है लगभग वैसा ही सूरदास की साहित्य लहरी के दृष्टकूटों का है। जो विद्वान सारावली और साहित्यलहरी को सूरदास की रचना स्वीकार नहीं करते उन्हें 'सूरसौरभ' में सूरदास के ग्रंथों की प्रमाणिकता शीर्षक प्रकरण को पढ़ना चाहिये। सूरदास के पदों में सूर सूरज सूरदास सूरजदास और सूरश्याम नाम आये हैं। यह भी एक ही कवि के कई उपनाम हैं जिनका नाम विवेचन सूरसौरभ तथा सूरदास और भगवद् भक्ति नाम के ग्रन्थों में हमने किया है।



तृतीय अध्याय

काव्य-वैभव

काव्य का प्रमुख चिन्ह भाव-परायणता है। काव्य-कला भाव पर ही आधारित है। भाव स्वय एक सगीत है जो चर एव अचर सभी को प्रभावित करता है। शिक्षित अर्धशिक्षित तथा अशिक्षित सभी भाव के प्रति आकर्षित होते हैं। सगीत में भी यह तत्व विद्यमान है। उस का भी आकर्षण अनुपम है। सगीत लहरी मग एव सब तक को मुग्ध कर देती है। स्वरो का विन्यास क्रम में आबद्ध होना एक ऐसी लय उत्पन्न करता है जो भाव की ही रूपान्तर मात्र है। काव्य भी सगीतमय होता है। नप तुल छन्दो में राग एव रागनियो में जो समस्वरता सगीतात्मकता है अथवा भावमयता है वह चराचर को अपने आकर्षण पाश में क्या आबद्ध कर लेती है? कहा जाता है कि सगीत एव काव्य जाग्रत को सुप्त एव सुप्त को जाग्रत कर सकते हैं। साम का सगीत अपने देश में प्रख्यात रहा है और परवर्ती सगीत में भी वायु को स्तब्ध तथा दीपक को प्रज्जवलित कर दिया है। श्रावण में मल्हार गाये जाते हैं उन की स्वरावलि आकाश की स्वरावलि के साथ यदि एक सम हो गयी अथवा उसे प्रभावित कर सका तो पूर्व विद्यमान परिस्थिति में परिवर्तन अवश्य कर देगी। विज्ञान अन्तरिक्ष में प्रवाहित प्रकाश लहरो तथा ध्वनि लहरो से आज हमें परिचित करा रहा है अत सगीत और काव्य से उत्पन्न प्रभाव की वैज्ञानिक परीक्षा भी की जा सकती है। दार्शनिक दृष्टि से हम भाव को निर्विकल्प निमित्त का मूल कह सकते हैं। यह भाव रस का जनक है आनन्द का उत्पादक है ऐसा अभी तक सभी आचार्य स्वीकार करते रहे हैं। आनन्द वाद शैव सम्प्रदाय का ही नहीं सभी आगमो का एक मात्र अतिम लक्ष्य है।

भट्टप्रवर महाकवि भवभूति के शब्दों में वाणी अर्थ का अनुधावन करती है। भाव या विचार जहाँ कहीं होंगे वाणी उन के साथ अनुचर की भाँति लगी रहती। कुछ विद्वानों को अनुचरता खटकती है वे भाव और वाणी दोनों को एक दूसरे में सम्पृक्त हुआ अनुभव करते हैं। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रारम्भ में जगत के पितर पार्वती और परमेश्वर को शब्द और अर्थ से उपमित किया है। वस्तुत वाणी का परारूप जिसे मूल उत्स भी कह सकते हैं शब्द और अर्थ के सम्मिलित रूप का ही नाम है जिसे किसी परिभाषा के अभाव में—अनिर्वचनीय ही माना जायगा।

वचनीयता वाणी के पश्यन्ति रूप से प्रारम्भ होती है और अव्याकृत से व्याकृत अनिरुक्त से निरुक्त तथा निर्वचनीय से वचनीय बनती जाती है। यह साम्यावस्था से विषमता की ओर तथा एकता से अनेकता की ओर प्रयाण है। काव्यगत शब्दों की अनेकरूपता एव विभिन्नता जहाँ हमें विविध भावों एव विचारों का बोध कराती है वहाँ काव्य की भावात्मकता हमें विषमता एव नानारूपता से हटा कर उस साम्यावस्था की ओर भी ले जाती है जहाँ विशुद्ध चैतन्य है एकान्त आनन्द है जहाँ वंश—वृक्ष नहीं दीपक—दीपक नहीं, लता—लता नहीं मृग—मृग नहीं सर्प—सर्प नहीं पक्षी—पक्षी नहीं और मनुष्य—मनुष्य नहीं एक शब्द में जो रस की स्थिति है अथवा आनन्द की व्यवस्था है।

भाव अथवा रसमयता पद्य में ही नहीं गद्य में भी हो सकती है पर यह गद्य साधारण गद्य से भिन्न होता है। साधारण गद्य उस प्रभाव से वंचित है उस आकर्षण से शून्य है जो उसके विशिष्ट रूप गद्य काव्य का प्रमुख चिह्न है। बाणभट्ट की कादम्बरी अथवा हर्षचरित का गद्य बनारसी आगमों का गद्य नहीं है। विचारात्मक अथवा रघुनन्दन के निबन्ध आप को विचार दे सकते हैं भाव नहीं। बाणभट्ट ने गद्य का प्रयोग किया है पर वह भाव गद्य है और इसीलिए उन गद्य—काव्य की संज्ञा दी जाती है। कोरा पद्य भी प्रभाव शून्य होता है। उसकी पद्यात्मकता छन्दोबद्धता नियमित वर्ण मात्रा वक्रता थोड़ी देर के लिए कानों को भले ही आकर्षित करले पर भाव के अभाव में मन को आकर्षित नहीं कर सकता।

काव्यगत शब्द सभी दशाओं में सामान्यरूप से प्रभविष्णु नहीं होते हैं कवियों का शब्द-भण्डार एक समान होता है। सब की अपनी-अपनी अभिव्यञ्जना है सबकी अपनी-अपनी ढाल एव संस्कार हैं। शब्द सम्पन्न एव

भाव सम्पदा जिस कवि क पास जितनी अधिक है उतना ही वह कवि समथ एव शक्तिशाली है ।

कछ कवि आग बढ़त हैं कुछ ऊ चे उठते हैं कुछ गहराई म प्रवेश करते है और कुछ उस गहराई स मोती ढ ढ लाते हैं । आग बढना शब्द सम्पदा विचार वभव एव भाव प्रवणता का अचन करना है ऊ चे चढन मे अथदीप्त भणित भगिमा तथा कला वदग्ध्य की उपलब्धि है और गहरे घसने म रसवत्ता है । जा कवि गहराई म प्रवेश करता है उसक विमल विचार एव भ य भाव सर्वोत्तम शब्द द्वारा ही अभिव्यक्त हात हैं । वहाँ आप श दा से भाव का और भाव का श दा स पथक नहीं कर सकते । काव्य के शब्दा म वहाँ श्रष्ठ भावा का कुशलतम अभिव्यक्ति हाती है । जिस हम कवि की छाप कहते हैं वह एसी ही काव्यो म देखी जा सकती है और गहराई म जाकर मोती ढू ढ लाने वाले बहुत ही थोड कवि हात हैं । हमारे सूर ने गहराई में डूबकर खूब मोती ढू ढ हैं ।

महाकवि सूरदास के काव्य वभव की परीक्षा जिन मनीषियो न की है वे सब समवेत स्वर स भाव विभव ही नहीं उनकी शब्द सम्पदा की भी प्रशसा करते हैं । स्व० आचाय रामचन्द्र शुक्ल के शब्दा म सूर म जितनी भाव विभोरता है उतनी ही वाग्विदग्धता भी ।' वात्सल्य एव विप्रलम्भ शृ गार क ता वे अद्वितीय कवि है । वात्सल्य भाव का तो व कोना-कोना झाँक आये हैं और विप्रलम्भ क क्षत्र म उन्होंने जिस भाव दशाओं का उल्लख किया है उसमें से अनक दशाओ का आचार्यों का नामकरण करना पडगा। यह प्रशस्ति सब कविया क भाग्य की बात नही है । सूर की शब्द सम्पदा भी अतुल है । शब्द सम्पदा के साथ साथ उनका प्रयाग भी अभूतपूव है, एक ही बात को वे न जान कितने रूपों म उपस्थित करने की क्षमता रखते हैं । एक बात को कहन क न जान उन्ह कितने ढग आते हैं । आचाय कुत्तक की वक्रोक्ति गरिमा पर विचार करें तो सूर की रचना म उसके विपुल उदाहरण देखने को मिलेंगे । शब्द सम्पदा एव भाव विभव का ऐसा धनी कवि किसी जाति को भाग्य से ही मिलता है । और विश्व म कभी-कभीही अवतार लता है ।

(अ) शब्द-सम्पदा

जब हम श द और अथ की बात करते हैं तब कवियो के कलानपुण्य के विश्लेषणों में सवप्रथम शब्दा की मीमांसा करनी पडती है । सूर की शब्द

सम्पदा अपरिमित है। वे व्रज म रहने थे अत व्रजभाषा के शब्दो तथा उनके प्रयोगो से परिचित होना उनके लिए स्वाभाविक था। परन्तु इसका अर्थ यह न था।

अन्य बोलियो के शब्द व्यवहार से अपरिचित थे वस्तुत समग्र देश एक ऐसी बोली से परिचित रहा है जिसे हम भाषा विज्ञान के शब्दो म राष्ट्रभाषा कहा करते हैं। प्राकृत काल म भी यद्यपि महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी प्राकृत से भिन्न मानी जाती थी परन्तु उसकी विभिन्नता स्वल्प मात्रा तक ही सीमित थी। शेष शौरसेनीवत कह कर आचार्य वररुचि ने इस भाषागत एकय की घोषणा कर दी है। भारत के मध्यदेश की भाषा न जाने कब से भारत की राष्ट्रभाषा का कार्य करती आ रही है। प्राकृत से पूर्व पाली और पाली से पूर्व संस्कृत इसी माननीय कार्य की वहिकायें रही हैं। अपभ्रंश युग म हम राजनैतिक दृष्टि से कई खण्डो म विभक्त थे पर संस्कृति दृष्टि से पूर्व की ही भाँति एक बने हुए थे और उस संस्कृति की वाहिका मध्यदेश की ही भाषा थी। व्रजभाषा अपने रूप म व्रज से बाहर भी व्याप्त थी। राजस्थान की मीरा गुजरात के नरसी महता महाराष्ट्र के नामदेव तथा बंगाल की व्रजबूलि म रचना करने वाले सभी व्रजभाषा से परिचित और उसमे काव्य का निर्माण करने वाले हुए हैं। प्रान्तीयता का मोह आज भले ही प्रबल हो पर वह उन दिनों न थी था। जायसी के पद्मावत का आज की वर्तनिकता भले ही अन्य भाषा म लिखित प्रमाणित करे पर वह देश की सामान्य राष्ट्र के निकट ही है। विश्लेषण पद्धति रामचरित मानस का अवधी का काव्य कहती है पर उसका जितना समादर अवध म है उसमे कहीं अधिक व्रज म है और यदि हम पंजाब राजस्थान आदि की बात करें तो वहाँ भी वह उतना ही मात्रा म प्रचलित दिखाई देगा। राष्ट्रभाषा अथवा सांस्कृतिक भाषा एक विशेष आधार को लेकर प्रचलित होता है और आगे बढ़ती है पर तु अन्य प्रदेशो म प्रचलित शब्दावली को भी अपने साथ लिए रहती है। अपने रूप म वह सवमान्य होता है। व्रजभाषा का यही सवमान्य रूप था। उसके शब्द कई स्थानों से निकल कर एक में समाविष्ट हो गए थे। माँस का गोश्त या बलिया कहना सभी जानते थे खाना भोजन व्यंजन आहार प्रसाद आदि शब्द सब परिचित थे। उनके उच्चारण में जलवायु के प्रभाव को अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। पर वह लिखित साहित्यिक रूप में समझने की ओर ही अधिक जायगा भिन्य की ओर कम।

सूरसागर की शब्दावली देश भाषा की इसी भ्रान्ति स प्रेरित है।

ब्रजभाषा सूरसागर की रचना द्वारा विशुद्ध साहित्यिक रूप को प्राप्त हुई ऐसा सूर साहित्य के अनेक पारखी विद्वानों का मत है। सूरदास के पूर्व वह साधुओं द्वारा राष्ट्रभाषा के रूप को तो प्राप्त कर चुकी थी पर साहित्यिक रूप उसे सूरदास द्वारा ही उपलब्ध हुआ। ब्रज की चलती बोली संस्कृत के तत्सम शब्दों से समन्वित कर के सूर ने ब्रजभाषा का जो रूप खड़ा किया वह अपनी मसृणता कोमलता माधुर्य एवं भावप्रवणता के कारण अवध बिहार, बंगाल पंजाब या दक्षिण पथ के कवियों का कण्ठहार बन गई। इस देश में लगभग चार सौ वर्षों तक राष्ट्रभाषा के इस रूप ने कवियों की जिह्वा पर शासन किया उसमें पद्य तथा गद्य दोनों ही प्रभूत मात्रा में लिखे गये हैं। पुष्टि सम्प्रदाय का वार्ता साहित्य इसी भाषा में है उन दिनों के कुछ प्रबन्ध टीका विवृति एवं भाष्य भी ब्रजभाषा गद्य में ही लिखे गये हैं।

(आ) व्रज के प्रचलित शब्द

सूरसागर में ब्रजभाषा के प्रचलित शब्दों का आधिक्य है। इन शब्दों में जो आंचलिक सौन्दर्य अन्तर्हित है उसे ब्रजवासी सुगमता से अनुभव कर सकते हैं। नीचे हम सूरसागर में प्रयुक्त ऐसे शब्द उद्धृत कर रहे हैं जो ब्रज प्रदेश और उसके आसपास प्रचलित है।

ढुर—पुरुषों के कान का आभूषण उरिक सलोरी—लड़कपन बर—जल जाय छाक—कलेऊ मठठा आदि के साथ अल्प भोजन भौंडा—छोटा लड़का भौराचक डोरी—बच्चों के लिए खिलौने लरिकिनी—लड़की करिया—छोटी लड़कियों का कमर के नीचे वस्त्र झारी—लोटा अचगरी नटखटपन बाट—गैले—भाग हुए नाऊ—नाम जाव—पूजा उछहौं—गहरा यथायथ गिडरी सिर पर घड़ा रखने की मूंज की बनी गोल वस्तु खेड—ग्राम के पास पन—माग खाही—किसी वस्तु या नरई का बना हुआ सिर ढकने का साधन स्वाँगिया जिसे वर्षा में कृषक या मजदूर लगाते हैं खजर—खपरना अकारण छरना अवसर—रसमा—मिट्टी का पात्र एसी—इस वय, कनियाँ—गोद के बच्चे को कन्धे पर बिठाना तनक—छोटा थोड़ा पड़ परया—पीछे पड़ना भौतेरे—अनेक वाखरि—घर ढोरी—बच्चा आरगाना—भोजन करना, करीवनि—सराहना अमात—समाजाना इत्यादि।

(इ) संस्कृत शब्द

किसी बोली को साहित्यिक भाषा का परिमार्जित रूप देने के लिए

आवश्यक होता है कि उसमें प्राचीन देश आर्यों तथा परम्परा ग्रहीत शब्दों का प्रयोग हो। भारतवर्ष में संस्कृत भाषा इसी प्रकार की भाषा थी। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं ने अपने कलेवर की श्री समृद्धि इसी भाषा के शब्दों को अपना कर की है। सूर सागर में संस्कृत भाषा के तत्सम एवं तद्भव दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हुए हैं।

(१) तत्सम शब्द

गिरिधर गजधर माधव मुरलीधर पीताम्बरधर गोवर्धनधर गंगाधर मुकुटधर अधर सुधाधर कम्बुकंठधर कौस्तुभ मणिधर गोपवेश परागमद मुकुलित अम्ब कदम्ब मुनि, मधुप अम्बुज, अभिराम अजिर अपरिमित आयुध कलभ दारा, दम्पति निरालम्ब नृपति दिनान्त पश्म रसना राका वसुधा सरसिज हाटक आदि।

(२) तद्भव शब्द

अवजम कल्म, जनम परतीति, भरमत मारग मरजाद स्वान उछंग अचरा छिन धरनी खग चवाई, जोम तरुनाई दूब पाँवरी भौन सजनी मीत मावरा छौना वाहनी आदि।

किसी भाषा में व्यापकता लाने के लिए आवश्यक होता है कि उसमें अन्य समागिनी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया जाय सूरसागर में फारसी अवधी पंजाबी गुजराती आदि कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। मुसलमानी शासन अपने साथ विदेशी शब्दों को लाया जिनमें अरबी फारसी एवं तुरकी शब्दों की भरमार थी। यथा खसम जवाब सजा, बक्सी, मवास खवास मसक्कत जहाज, सरताज, दामनगीर, मुहकाम बाज नफा ख्याल नाहक, खच लायक बजार, गरीब, खाक दर खबर जहर फौज।

अवधी के शब्दों में खाइस, होइस मोर तार कौन ऐसो आदि का प्रयोग है। गुजराती भाषा के विव एव सच शब्दों का प्रयोग सूरसागर में मिलता है और ए शब्द अपनी परम्परा में सुदूर वैदिक काल तक जाते हैं। वेद में सचत्व तथा सतश्च असतश्च विव प्रयोगों में ये शब्द विद्यमान हैं। विव शब्द का एक रूप अपने वैदिकालीन अर्थ में ही फ्रेंच भाषा में भी अभी तक जीवित है। यह है Bevue जिसका अर्थ है Two sight दो दृष्टियाँ

वद गुजराती व्रज तीनो म ही विव शब्द का अथ दो होता है।

पजाबी भाषा की प्यारी शब्द मूल्यवान अथ म सूरसागर म प्रयुक्त हुआ है। बुन्देलखण्डी के गहिबी साहबी आदि शब्द भी यत्र तत्र आ गय हैं। पुराने पड हुए प्राकृत के सायर जसे शब्द भी प्रयुक्त हो गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि व्रजभाषा जसी व्यापक भाषा को सूर न उसे व्यावहारिक बनान के साथ साहित्यिक रूप भी द दिया।

छन्दो म भाषा सीमाबद्ध हो जाती है। तक मिलान क लिए छन्द की गति को स्थिर रखन के लिए तथा गति आदि दोषो को दूर करने के लिए प्राचीन आचार्यो न अपिमाषम भषम कुयान कहकर शब्दो के तोड-मरोड की छूट दे रखी है। सूर न इस मुक्तता स लाभ उठाया है। उ होंने पगु को पग नवनीत का लवनी क्तु को क्त गो को गइया वष को बारीस राजसूय को राजसू गमन का गल देवकी का दव आदि कर दिया है।

सूर क हृदय म भावधारा बड वग स प्रवाहित होती थी। उसका प्रभाव असदिग्ध रूप स भाषा पर ही पडा है। सूर की भाषा प्रभावमयी है। यह प्रवाह स्वत भाव क उमडन क साथ प्रकट हो गया है। इसक लिए सूर को सोचना नहीं पडा। भाषा को इन भावो के पाछ पाछ दौडना पडा है। नीचे लिख पद भाषा का वग और उस वग क साथ साथ चित्र अपन आप खडा हो जाता है।

भहरात झहरात दावानलन आयो।
घरि चहु ओर करि सोर अदोर बन धरनि आकाश चहु पास छायो।
बन बाँस थहरात कस कोस जरि उडत है मास अति प्रबल धायो॥
झपटि झपटत लपट फूलफल चट चटकि फरत लट ल्टकि द्रुम दम नवायो।
वरन बनपात भहरात झहरात अररात तरु मटठा घरनी गिरायो॥

पद म भाषा की द्रुतिगति दखत ही बनती है। भाव चित्र भी बिना किसी अवरोध क मानस चित्रपट पर प्रांजलता क साथ अंकित हो जाता है।

(ई) ध्वन्यात्मक शब्द, लोकोक्तिया तथा मुहावरे

किसी भाषा को सजीव बनान क लिए उसम ध्वन्यात्मक शब्दो का मुहावरों और लोकोक्तियो का प्रयोग आवश्यक समझा गया है। सूरसागर

में ये विशेषतायें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। इनके प्रयोग से विचार एवं भाव सप्राण हो गये हैं। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

अपना पेट दियो तें उनको। दाई आग पेट दरावति।
कौरे लागो होयगो कितहूँ। की गरु कहौ कि मौन छाडो॥
कहन लगी अब बढ़ि बढ़ि बात, हम तन मन दै हाथ बिकानी
मो आगे को छोहरा जीत्यो चाहै माहि।
छठि आठ माहि कुँवर सा, बहुत मूढ़ चढ़ायो।
घुर ही तें खाटा खायो है। मन की मन ही माहि रही।
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आप उतारी।
तुम चाहति हो गगन तरया, मागे कैसे पावहु।
मथुरा हू तें गये सखीरी अब हरि कारे कासन।
जीवन मुँह चाही का नीको' एक डार के तोर।
खेलन अब मेरी जाति बलया, कहा ठगीसी ठाडी ढाल बजाय ठगा
कत पट पर गोता मारत हौ निरे मूड के खेत।
जैसे उडि जहाज का पछी फिर जहाज पर आवै।
ताका वेस खस नहि सिर ते जो जग बर पर।

नीचे की पंक्तियों में ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से कितनी सजीवता, कितनी प्रौढ़ता और कितनी चित्रात्मकता आ गई है—

आजु ही चटक भई तू न्यारी।
अटपटाय बल बल करि बोलत।
गगन मेघ, गहरात, घहरातघात चपला चमचमानि।
चमक नभ भहरात, तरपत नभ डरपत सब लाग'
घहरत तरतरात गरति हहरात, झरहरा परपरात माथ नाय।
लटकत मुकुट मटक मोहनि की चटकत चलत मन्द मुसकात।

इन पंक्तियों के शब्द अपने आप बोल रहे हैं। वे सजीव हैं। रूप-चित्र तथा भावचित्र अंकित होता है। वह पाठकों के मन को बरबस अपनी ओर खींचने की शक्ति रखता है।

(उ) वृत्ति और गुण

साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने शब्दों में वृत्तियों और गुणों का भी आधार स्वीकार किया है। वृत्तियां तीन हैं— १ परुषा २ कोमला ३ और

उपनागरिका । इन्ही के आधार पर ओज, माधय और प्रसाद गुणों की स्थिति का य म निस्पन्न होती है। सूरसागर में सवत्र सरल सरस तथा प्रसाद गण पूण पदावली का ही प्रयोग हुआ है। जहा दष्टकूट आय है वहा पाण्डित्य क साथ क्लिष्टता का भी समावश हो गया है। अ यत्र उनकी रचना अत्यन्त प्रसन्न शली म ही अभि यक्ति हुई है। ज ा अलकार भी आय है वहा वे अथ स्पष्टीकरण म यवधान नहीं बनत अपित सौ दय उपस्थित करत हैं।

नीच वत्तिया तथा गणो क उद हरण दिय जाते हैं—

(क) परुषावनि और ओजगण—

गष्ट गाप क या रत पूरन दुष्टन दम भत्तन दुख चूरन ।
शल चूड चाणूर सहारन शक्र कन्द माहि रच्छा करन ।।

(ख) कोमलावनि और माधय गुण—

नवल निक त नवल नवला मिलि नवल निकतन रुचिर बनाय ।
विलसत विपिन विलास विविधवर वारिज वदन विकच सचपाय ।

(ग) उपनागरिकावति और प्रसादगुण——
रघपति प्रबल पिनाक विभजन जगरिन जनक सुतामनरजन ।

गोकलपति गिरधर गुनसागर गोपी रमन रास रति नागर ।

ङ शब्दशक्तिया

साहित्य मनीषिया न शब्दशक्तिया का विभाजन शब्दो क अर्थो का ध्यान म रख कर किया है। का य म जिन शब्दो का प्रचलित अथग्रहण करन स काम चल जाता है उनम अभिधाशक्ति मानी जाती है और उनम जो अथ निकलता है उस वाच्याथ कहा जाता है। जब शब्द प्रचलित अथ को छोड कर किसी निकटवर्ती अथ को प्रकट करता है तब उसम लक्षणाशक्ति मानी जाती है और उस स प्रकट हुए अथ को लक्ष्याथ की सज्ञा दी जाती है। और जब न तो शब्द क वाच्याथ स काम चलता है और न लक्ष्याथ स तब शब्द व्यजनाशक्ति क सहार किसी व्यग्याथ को प्रकट करता है। कवियो की रचनाओ म शब्द की तीनो शक्तिया का व्यवहार होता है। विवचन की दष्टि स सभी आचाय इस विषय म एक मत नहीं हैं। किसी किसी न अभिधा और लक्षणा दो शब्द शक्तियो को ही प्रधानता दी है

और व्यंजना का समावेश लक्षणा में ही कर लिया है। इन के मतानुसार जब शब्द के वाच्यार्थ से हट कर किसी अन्य अर्थ को ग्रहण करना ही है तो वह अर्थ चाहे निकटवर्ती हो चाहे दूरवर्ती है तो वाच्यार्थ से भिन्न ही। अतः उसे एक लक्षणा के वर्ग में ही अन्तर्युक्त क्यों न माना जाय। अन्य आचार्य इसे भी स्वीकार नहीं करते। उनके मत में अर्थ निकलता तो शब्द से ही है अतः उसे कई वर्गों में विभक्त करने की क्या आवश्यकता है। आचार्य महिम भट्ट अभिधावादी कहे जाते हैं। उनकी दृष्टि में शब्द के सभी अर्थ वाच्यार्थ हैं फिर भी सुविधा की दृष्टि से विवेचन की गहराई में न जाकर अर्थ का तीन वर्गों में विभाजन प्रायः अब सर्वसम्मत माना जाता है। सूर की रचनाओं से इन अर्थों के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) अभिधाशक्ति

देखि सखी सुंदर घनश्याम।
सुंदर मुकुट कुटिल कच सुंदर सुंदर भाल तिलक छवि धाम॥

इन पंक्तियों में शब्दों का प्रचलित अर्थ ग्रहण करने से ही काम चल जाता है। अतः इनमें अभिधा शक्ति है और वाच्यार्थ की प्रधानता है।

(ख) लक्षणाशक्ति

मुख पर चंद्र डारौं वारि।
कुटिल कच पर भौंर वारौं भौंह पर धनु वारि॥

इन पंक्तियों में मुख पर चन्द्रमा को, बालों पर भ्रमर को और भौंहों पर धनुष को न्योछावर करने का क्या अर्थ है यदि शब्दों का अर्थ प्रचलित अर्थ लिया जाय तो यह स्पष्ट नहीं होता। जिन वस्तुओं को न्योछावर किया जा रहा है वे सौन्दर्य की विशेषता अथवा किसी विशेषता में मण्डित हैं जैसे भ्रमर की श्यामलता और धनुष की वक्रता। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि मुख सुन्दर है चन्द्र की शोभा उससे कम है। बाल श्यामल हैं। भ्रमर की श्यामलता से भी कुछ उच्चस्तर पर ही हैं। भौंहें वक्र हैं धनुष की वक्रता की अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं।

(ग) व्यंजनाशक्ति और व्यंग्यार्थ

उर में माखन चोर गड़े
अब कैसेहु निकसत नाहिं ऊधौ तिरछे ह्वै जो अड़े॥

जो वस्तु गड जाती है उस का निकालना कठिन है गापियाँ तक द्वारा कहती हैं जा वस्तु अन्दर जाकर तिरछी हो जाय उसका निकलना तो और भी कठिन है। यहाँ गडन का प्रचलित अथ नही लिया जा सकता क्योंकि कृष्ण काई काँटा नही हैं और गापिया क हृदय भी पार्थिव या मासल नही हैं कृष्ण का सौन्दय निराकार और गापिया की हृदगत भावना भी निराकार है। गडने का अथ है गापिया के हृदय पर कृष्णसौन्दय क अतिशायिमत प्रभाव का पडना। यहाँ तक ता लक्षणा हुई। परन्तु सूर के लिखने का इतना ही तात्पय नहा है सूर तिरछे हाने की बात कह कर यहा कृष्ण की त्रिभगी मुद्रा की आर भी सकेत कर रहे हैं अत इसम वाच्यसम्भवा व्यजना है।

अलकनि की छवि अलिकुल गावत

भ्रमर अलकों की छवि का यशागान कर रहे हैं। इस उक्ति म अलकों की श्यामलता तथा सुन्दरता छिपी हुई है और आर्थी व्यजना द्वारा प्रकट हो रही है।

देखियत कालिन्दी अतिकारी।
कहियो पथिक जाय उन हरि सा भई बिरह जर जारी॥

× × ×

यमुना म रग स्वभाव से ही नीला है। उस कृष्ण के विरह के कारण काला कहा गया है विरह म उत्ताप होती है। ताप म जल कर काला हो जाना स्वाभाविक है। यहाँ एक सहज रग के कारण उदभावना द्वारा वह रग प्रदान किया गया है। यह कथन वाकछल तथा हेतु अलकार म परिगणित होगा। परन्त अथ यही तक सीमित नही हो जाता सामान्य अथ निव घना द्वारा उसस गापिया के गौरवण का श्यामल हो जाना भी गम्य है और ग्रीष्म की उष्मा म जसे यमुना की धारा कृश हो जाती है उसी प्रकार उसम गोपियों की कृशता भी ध्वनित हो रही है।

१ शब्दो के साथ क्रीडा

सूर न आचाय वल्लभ स दीक्षित होकर जिस हरि लीला का गायन किया है उसम असग एव सहज विनाभ्वत्ति विद्यमान है। प्रभु आत्मक्रीड हैं। व अपन म ही और अपन स ही खेल रह हैं। शुद्धाद्वैत मत म जगत हरि का रूप है और जीव चिदश है। कनक कुण्डल न्याय क अनुसार जो कुछ है